Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 10 | ISSUE : 6 | JUNE 2024

भारतीय सीधी उच्चभूमि का भू -आकृतिक वर्णन : एक पर्यावरणीय दृश्य

महेंद्र सिंह परिहार [1]

[1] **अतिथि संकाय, हुआ देवी माना राम कॉलेज, मालवाड़ा (आर), न्यू एशिया कॉम्प्लेक्स के सामने, हाई स्कूल रोड, भीनमाल, जालौर (राजस्थान).**

ABSTRACT:

भू-आकृति विज्ञान किसी भी प्रदेश में कार्यरत भ्वाकृतिक एवं भूगर्भिक प्रक्रमों की क्रिया एवं प्रतिक्रिया से उत्पन्न रचनात्मक एवं विनाशात्मक भू-आकृतियों की जननिक उत्पत्ति क्रमिक विकास एवं वर्तमान स्वरूप का क्रमबद्ध व्याख्यात्मक. वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन है। मूलतः भू-आकृति विज्ञान स्थलरूप एवं उनकी उत्पत्ति से सम्बद्ध प्रक्रमों के अध्ययन का विज्ञान है क्योंकि एक तरफ जहाँ इसमें वलन, भ्रंशन, संवलन, उत्थान अवतलन, नमन, कम्पन एवं उद्भेद जैसी भौमिकीय शक्तियों से उत्पन्न स्थलरूपों का अध्ययन किया जाता है. वहीं दूसरी तरफ अपक्षय, अपरदन एवं निक्षेप से सम्बद्ध भ्वाकृतिक प्रक्रमों से उत्पन्न स्थलरूपों का गहन विवेचन किया जाता है। भूतल के दृढ़ भूखण्डों पर पुरातनकाल से ही विवर्तनिक एवं जलवायविक प्रक्रम अनवरत् सक्रिय रहे हैं। जिनके अध्ययन से सम्बन्धित उपागमों की खोज भू-आकृति विज्ञान के विकासकाल में निरन्तर होती रही है।

KEYWORDS:

भू- आकृति, उच्चभूमि, पर्यावरणीय दृश्य, विज्ञान, संकल्पना, अध्ययन, विश्लेषण।

PAPER ACCEPTED DATE:	PAPER PUBLISHED DATE:
12th June 2024	14th June 2024

आलेख प्रस्तुति

भारतीय सीधी उच्चभूमि की अवस्थिति

सीधी उच्चभूमि दकन पठार की उत्तरी अग्रभूमि पर विन्ध्यप्रदेश पर फैला हुआ हैं जिस पर विभिन्न भ्वाकृतिक प्रक्रमों जैसे वलन, भ्रंशन, संवलन, उत्थान, अवतलन, अपरदन और जमाव आदि ने भू-आकारों के इतिहास को इस प्रकार लिखा, मिटाया तथा पुनः लिखा कि यह प्रदेश प्राचीन पाण्डुलिपि की तरह हो गया है, जहाँ बहुचक्रीय भूदृश्यों की ही प्रधानता है जो आर्कियन युग से वर्तमान काल तक कार्यरत प्रक्रमों के कार्यों के परिणाम है। सीधी उच्चभूमि 23°47' उत्तरी अक्षाँश से 24°32' उत्तरी आक्षांश के मध्य एवं 81°22' पूर्वी देशान्तर से 82°15' पूर्वी देशान्तर के मध्य विस्तृत है जिसका क्षेत्रफल 3397 वर्ग किलोमीटर है। सीधी उच्चभूमि अर्द्धशुष्क मानसूनी जलवायु प्रदेश में स्थित है जहाँ मध्य जून से मध्य सितम्बर के वर्षा काल में वर्ष की 90 प्रतिशत से अधिक वर्षा प्राप्त होती है तथा शीत एवं ग्रीष्म ऋतुएँ शुष्क रहती हैं।

सीधी उच्चभूमि के उत्तर में सोननदी पूर्व में गोपद नदी एवं पश्चिम में बनास नदी प्रवाहित होती हैं तथा इस क्षेत्र की दक्षिणी सीमा पर मवाई नदी प्रवाहित होती है। सोन, गोपद एवं बनास की प्रमुख सहायक नदियाँ बेलहा, पाण्डवी, उमरारी, बिजौर, खमराई देवनार हिरून, घिघनई धुन्नई, सुनहरा, सेहरा, बरचार, धुन्ना तथा सिंगार है। इस क्षेत्र की अधिकतम ऊँचाई 680 मीटर और न्यूनतम ऊँचाई 200 मीटर हैं। अध्ययन क्षेत्र की उत्तर-दक्षिण चौड़ाई 72 किलोमीटर एवं पूर्व पश्चिम लम्बाई 102 किलोमीटर है। अध्ययन क्षेत्र का प्रमुख नगरीय केन्द्र सीधी है तथा प्रमुख बाजार केन्द्र मझौली, माड़वास, चौपहल, पवनेर, खानतारा, तला, सेमरिया करवाही, खेम, पटरौला, भरवाही चौहानी एवं हनुमानगढ़ है।

"भारतीय सीधी उच्चभूमि का भू -आकृतिक वर्णन"

वर्तमान भू-आकृति विज्ञान में स्थलरूपों का मात्रात्मक अध्ययन आकारमितीय विधियों के सहयोग से किया जा रहा है तथा स्थलरूपो के विकास के विविध अनुरूपों (मॉडलों) के परीक्षण का प्रयास किया जा रहा है। इस सन्दर्भ में विवाद का प्रमुख बिन्दु यह है कि स्थलरूपों का विकास समय सापेक्ष अथवा समय निरपेक्ष • होता है। यह प्रक्रम रूप उपागम के अनुरूप विकसित होते हैं या विवर्तनिक एवं जलवायविक प्रक्रमों के परिणाम हैं। इन्हीं समस्याओं के निदान एवं परीक्षण के लिए भू-आकृति विज्ञानवेत्ता बहुचक्रीय भूदृश्य वाले प्रदेशों का चयन कर वहाँ कार्यरत प्रक्रमों एवं उत्पन्न स्थलरूपों का प्रक्रम-रूप एवं समयान्तराल के अनुरूप विवेचन करते रहे हैं। भूतल के दृढ़ भूखण्डों एवं प्राचीन खण्डों की स्थलाकृतियाँ मूलतः उस प्राचीन पाण्डुलिपि (पालिम्पसेस्ट) के रूप में है जहां पर अनेक भूगर्भिक कालों में सक्रिय विविध प्रक्रमों ने स्थलाकृतिक इतिहास लिखा, मिटाया तथा पुनः लिखा। स्थलाकृतियों पर वर्तमान प्रक्रमों के प्रभाव अधिक स्पष्ट होते है किन्तु इनकी ढाल परिच्छेदिकाओं एवं संस्तर तलों पर प्राचीन प्रक्रमों एवं स्थलरूपों के लक्षण विद्यमान हैं जिनकी पहचान करना भू-आकृति विज्ञान के अध्येता का प्राथमिक उद्देश्य है। वर्तमान काल में आकारमितिक विधियों के प्रयोग द्वारा इनका अध्ययन अत्यन्त सरल हो गया है।

भू-आकृतियों के अध्ययन के लिए सर्वाधिक गम्भीर समस्या यह है कि किसी भी प्रदेश में केवल एक ही भ्वाकृतिक कारक एक काल में सक्रिय नहीं होता अपितु अनेक कारक विभिन्न संरचनाओं पर विभिन्न तीव्रता में सक्रिय होते हैं जिनको प्राथमिक रूप से जलवायविक कारक प्रभावित करते हैं (सविन्द्र सिंह, 1978 बी)। इस समस्या के निराकरण के लिए भू-आकृति विज्ञान वेत्ताओं ने विभिन्न प्रदेशों के अध्ययन हेतु अलग-अलग उपागमों को प्रस्तुत किया। वर्तमान काल में भू-आकृतियों के मात्रात्मक अध्ययन पर बल आकारमितिक उपागमों एवं विधियों की सहायता से दिया जा रहा है जिनकी सहायता से प्रक्रमों एवं आकारों का सम्यक् विश्लेषण एवं मापन किया जा सके अपवाह बेसिन ही ऐसा रंग मंच है जहाँ प्राकृतिक एवं मानवीय प्रक्रमों द्वारा स्थलाकृतिक विकास के दृश्यों का मंचन निरन्तर किया जाता है क्योंकि अपवाह बेसिन उत्पत्ति के साथ-साथ विभिन्न भू-आकारों के संग्रहालय के रूप में होता है। वर्तमान भू-आकृति विज्ञान में आकारमितिक अध्ययन स्वच्छंदतापूर्वक किए जा रहे हैं और प्रवाह बेसिन के विभिन्न पहलूओं के मध्य अन्योन्याश्रित सम्बन्धों का विश्लेषण एवं सम्बन्ध जनित प्रभावों को खोजने का प्रयास किया जा रहा है। लियोपोल्ड (1964) ने स्पष्ट किया कि जलीय मात्रात्मक विधियों भू-आकारों के उत्कृष्ट विवरण को प्रस्तुत करती है परन्तु प्रवाह जाल की व्याख्या नहीं करती (ब्लूम, 1970 और होवार्ड, 1985)।

अपवाह बेसिन के अध्ययन के लिए तन्त्रीय उपागम के प्रयोग के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जा सकता है जिससे बेसिन के विभिन्न पक्षों और उनसे सम्बन्धित पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित किया जा सके (ग्रेगरी और बैलिंग, 1973)। डब्लू. एम. डेविस ने भौगोलिक चक्र (1899) को एक बन्द तंत्र के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया तथा यह स्पष्ट किया कि

जब उत्थान और अपरदन के चक्र पूर्ण हो जाते हैं तथा उत्थान अतिरिक्त पदार्थ उपलब्ध कराता है तो उठा हुआ भू-भाग एक आकृति विहीन समप्राय मैदान में परिवर्तित हो जाता है।

जबकि नवोन्मेष के कारण नवीन अपरदन के चक्र पुनः प्रारम्भ हो जाते है तथा उसमें नये अध्याय जुड़ने के अवसर प्राप्त हो जाते हैं। एक मुक्त तन्त्र में इस प्रकार की सीमाओं की बाध्यता नहीं होती क्योंकि इसमें उर्जा की आवृत्ति, निष्कासन और स्थानान्तरण पर विशेष स्थान दिया जाता है। शोर्ले (1962) ने भी प्रवाह बेसिन की स्थलाकृतियों के अध्ययन के लिए सामान्य तत्र उपागम के प्रयोग पर बल देते हुए स्पष्ट किया कि भू-आकारों की एकीकृत जटिलता, जिस पर विभिन्न कालों में ऊर्जा स्त्रोतों ने अपना प्रभाव प्रदर्शित किया के विकास का अध्ययन ही अभीष्ट है (शोर्ले और हैगट, 1967) |

विभिन्न अपरदनात्मक प्रक्रम जलवायविक कारकों और भूगर्भिक संरचना पर आधारित होते है जो लम्बे समयान्तराल के पश्चात् ऊर्जा के आगमन और बहिर्गमन परिवर्तित कर देते हैं। यह अपरदनात्मक प्रक्रम तीव्र गतिक, जलवायविक परिवर्तनों एवं विवर्तनिक घटनाओं के कारण बाधित हो जाते है जिससे अपरदन तन्त्र की संक्रमण अवस्था का सूत्रपात हो जाता है जिसे संचालित करने में ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है। इस तथ्य की ओर हैक (1960), शोर्ले (1962), शूम और लिवी (1965), शोर्ले (1967 1964, 1966), होम्स (1964), और होवार्ड (1965), ने अपने अध्ययनों में इंगित किया है।

अर्कियन शैल तंत्र

अर्कियन शैल समूह अलग-अलग क्षेत्रों में वर्तमान है जिनका अनावरण अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी भाग में पूर्व से पश्चिम तक है। आर्कियन शैल समूह का मूर्तिहा, कुनझुन, बहेरा, सुकवारी, देवघर, कुबेरी, मारवा, गुजेर, चन्द्रेहरी आदि क्षेत्रों में अनावरण अधिक हुआ है। इसकी एक अनावृत्त पट्टी पूर्वी मध्यवर्ती भाग में पूर्व में गोपद बेसिन के किनारे लोझहर से बरका पहाड़ तक चली जाती है। लोझहर में इसकी चौड़ाई 10 किलोमीटर तक है। इस क्षेत्र के पूर्व में मुख्यतः क्वार्टजाइट और पश्चिम में मुख्यतः नीश तथा कुछ स्थानों पर ग्रेनाइट और शिश्ट शैले अनावृत्त है। आर्कियन क्षेत्र समूह का तीसरा क्षेत्र मध्यवर्ती भाग है जिसमें मुख्यतः क्वार्टजाइट वर्तमान है जो पूर्व में गोपद नदी के पश्चिम में कचोघर से प्रारम्भ होकर पश्चिम में बनास नदी के किनारे कुरकुहा पहाड़ तक चला गया है।

आर्कियन शैल समूह के क्वार्टजाइट पहाड़ियों के रूप में ऊंचे बड़े है। ग्रेनाइट एवं नीश गोलाकार शिखर और हल्के ढलानों वाली पहाड़ियों बनाते है जबकि निचले इलाकों में ये लहरदार स्थलाकृति का स्वरूप देते हैं।

कुडप्पा शैलतन्त्र

कुडप्पा शैल समूह अध्ययन क्षेत्र के पश्चिमी भाग में बनास नदी तक विद्यमान है। यह खेंजुआ पहाड़ी से खाम तक विस्तृत हैं। इस शैल समूह में क्वार्टजाइट, स्लेट, फाइलाइट, पट्टित हिमेटाइट तथा सिलिकान शैलें प्रमुखता से वर्तमान है।

भूभाग में एक के बाद एक कड़ी मुलायम चट्टानों की पट्टियों के कारण पहाड़ियों की कई समानान्तर श्रृंखलाए बन गयी है जिनके बीच में चौड़ी खुली हुई घाटियाँ है। घाटियों में शेल, स्लेट, फाइलाइट जैसे भंगुर शैल पड़े हुए हैं। इनके अपक्षीण उत्पाद एक प्रकार के भटियार उत्पादक है जो कि भूजल को आसानी से फैल जाने देते है जिसके परिणाम स्वरूप इस भू-भाग में भूजल सतह काफी गहरी है।

विन्ध्य शैल तंत्र

ऊपरी विध्यन के क्षेत्र का प्रतिनिधित्व सोन नदी के दक्षिण स्थित बनास बेसिन से गोपद बेसिन तक के निचले भाग के बालुका पत्थर से होता है। विन्ध्यन क्रम के क्वार्टजाइट, बालुकाश्म एवं पोर्सलेनाइट पर्वताकृतियों में है। शेल एवं चूना पत्थर भंगुर एवं घुलनशील होने के कारण अपक्षय तथा क्षरण से प्रभावित हुए है। शेल में अपक्षयी प्रक्षेप मटियार पदार्थ वाला हैं तथा भूजल की स्थिति अच्छी नहीं है और जल स्तर गहरा है चूना पत्थर में अपक्षीण क्षेत्रों में गुफाएं है तथा भूजल की विपुलता है। निचली विन्ध्यन के शैल खेन्जुआ के कगार के निचले हिस्से से प्रारम्भ होकर संक्रमण श्रृंखला की उत्तरी सीमा तक फैले हैं। चट्टाने प्रायः पूर्व से दक्षिण पश्चिम को गयी है जो बनास सोन संगम से पहले से लगभग 30 से 50 किलोमीटर तक फैली है। संस्तर उत्तर की ओर झुकाव लिए हुए है सबसे निचले आधार में क्वार्टजाइट समाविष्ट है जो कहीं कहीं पर लौहमय है। उत्तर की तरफ बालुकाश्म, शेल और चूना पत्थर के शैल मिलते हैं।

इसके उत्तर में रोहतास अवस्था के शेल एवं चूना पत्थर सोन नदी की गहरी कछार भूमि के नीचे दबे हुए हैं। इन शैलों के अनावरण सोन नदी के समानान्तर चुरहट, सीधी और बहरी क्षेत्र एवं बनास नदी के तल में मिलते है।

दकन ट्रैप

काले वैशाल्टिक शैल जो कि सम्भवतः दकन ट्रैप समूह के हैं, खेन्जुआ पहाड़ी के दक्षिण में पूर्व से पश्चिम तक पाये जाते हैं। ये चट्टाने बेसाल्ट युक्त लावा के आच्छादन से बनी हैं और अपने ही अपक्षरण से बनी लेटराइट मिट्टी से ढकी है। ट्रैप के बीच मे परतदार एवं रूपान्तरित चट्टानें है। दकन ट्रैप समूह ने समतल पठारों का निमार्ण किया है इसकी चट्टानें बहुत कठोर एवं सघन है जिनके अपक्षरण से काली मिट्टी, लेटैराइट एवं अन्य प्रकार की मिट्टियाँ बनती हैं। दकन ट्रैप से बनी मिट्टियों के बीच में छोटे पत्थर एवं कंकरीली मिट्टी रहती है। ऐसे क्षेत्रों में केवल निम्न स्तर एवं गुणवत्ता के बन पाये जाते हैं। इस प्रकार की मिट्टियाँ पठारों पर पायी जाती हैं। इन मिट्टियों का और क्षरण होने से अच्छी श्रेणी की भूरी दोमट मिट्टी बनती है यदि यह मिट्टी सरन्ध्र बेसाल्ट वाले क्षेत्रों में हो तो इस पर सागौन के बहुत अच्छे बन पाये जाते है इसमें एलुमिना होने के कारण जल ग्रहण की क्षमता बहुत अधिक होती है इनका विस्तार अध्ययन क्षेत्र में बिटारी, पोखारा, सदलहा, जनकपुर, भेलवा, धनखोरी, नौगवारी आदि क्षेत्रों पर है।

"भारतीय सीधी उच्चभूमि का वानस्पतिक पर्यावरण"

किसी भी भू-भाग की वनस्पति वहाँ के जलवायु के विभिन्न तत्वों (तापमान एवं वर्षा) मिट्टी, भूपृष्ठ का स्वरूप एवं भूगर्भिक इतिहास का प्रतिफल होती है। इनमें जलवायु की दशाएं, वनस्पतियों के वितरण एवं प्रकार को पूर्णतः प्रभावित करती हैं। अध्ययन क्षेत्र वनस्पतियों की दृष्टि से पर्याप्त सम्पन्न है, क्योंकि यहाँ तीव्र चट्टानी सतह, तीव्र ढाल, कगारी सतह के कारण कृषि कार्य कठिन है एवं वन विनाश से पर्याप्त क्षेत्र बचे रह गये हैं। यहाँ के वनों में तेंदू, बांस, खैर, टीक अर्जुन तथा आम, जामुन, महुआ, नीम तथा पहाड़ी भागों पर छोटी-छोटी कटीली झाड़ियाँ पायी जाती है।

सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र में अर्द्धशुष्क एवं मानसूनी प्रकार की वनस्पतियाँ मिलती है क्योंकि यहाँ वर्षाकाल के तीन महीनों में ही अधिकांश वर्षा होती है तथा शेष काल शुष्क ही समाप्त हो जाता है। यहाँ बड़े वृक्षों के साथ झाड़ियों उगती है। यहाँ के वनों में सागीन, साल, टीक तथा अन्य विविध पतझड़ वाले वृक्षों की प्रधानता रहती है वृक्षों की सघनता, वनस्पतिक स्वरूप आदि के आधार पर यहाँ की वनस्पतियों को निम्न 4 प्रकारों में विभक्त किया गया है - सागौन वन,मिश्रित वन,साल का मिश्रित वन, साल वन।

सागौन वन

अध्ययन क्षेत्र के उत्तरी पश्चिमी भागों पर सागौन के वन पाये जाते है। इस प्रकार के वन निचली विन्ध्यन भौमिकी संरचना के खेन्जुआ श्रृंखला के सीमित स्थलों पर पतली पट्टियों एवं टुकड़ों में अधिकतर उथले एवं सरन्ध्र मृदा वाले क्षेत्रों में पाये जाते है। यह चुरहट परिक्षेत्र के पश्चिमी भाग में सघनता से मिलते हैं जिनमें सागौन 20 से 60 प्रतिशत तक के अनुपात में मिलते हैं। सागौन वनों का वन संनिधि विकृत एवं सारणीय है।

मिश्रित वन

जिन क्षेत्रों में 80 प्रतिशत से अधिक आयतन मिश्रित प्रजातियों का है उन्हें मिश्रित वनों के रूप में वर्गीकृत किया गया है जो समस्त भौमिकीय संरचनाओं तथा सभी प्रकार की स्थलाकृतियों में फैले हुए है। अधिकांश मिश्रित वन खण्ड-खण्ड में बंटे हुए हैं तथा बीच बीच में विरल वन नैसर्गिक अथवा कृत्रिम रूप से रिक्त हुए वन तथा साल वन आते रहते हैं। सलई, धवा, तेन्दु साजा, गुंजा और आँवला इन वनों की मुख्य प्रजातियों है। लगभग पूरे क्षेत्र में प्रजाति संरचना लगभग एक सी है। इन वनों में हल्दू वृक्षों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है। नदी नाले के किनारे अथवा निचली ढलानों पर मिश्रित वन अधिक मिलते है। मिश्रित प्रजाति की बहुलता वाले विरल वनों के साथ ही 0.4 से 0.6 घनत्व वाले सघन मिश्रित वन भी क्षेत्र में मिलते हैं जिनमें मध्यम आयु वर्ग के वृक्षों की बहुलता है।

मिश्रित सालवन

मिश्रित सालवन अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी भाग पर विस्तृत भूभाग पर फैले हुए हैं। इन वनों का विस्तार अध्ययन क्षेत्र के सम्पूर्ण दक्षिणी भाग पर साल का मिश्रित वन है। इसका विस्तार घुन्डल, नरायनपुर, खेमचार बरमबाबा, परारीया, घुमा, सरसा, चुन्दवाही, पटपहरा, कुतौली, कुन्दपुर, चहरौला, चकहर, माखास, लुरगोही, हर्दी, पिपरहा, पोनारी, दुखोरिया, मेर्की, कंचनपुर आदि ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों पर है।

सालवन

जिन वन क्षेत्रों में आयतन के अनुसार 20 प्रतिशत या इससे अधिक साल उपलब्ध है उन्हें साल वन के रूप में वर्गीकृत किया गया है। क्षेत्र के साल वनों में साल का प्रतिशत 20 प्रतिशत से प्रारम्भ होकर 80 प्रतिशत तक एवं कहीं कहीं सीमित टुकड़ों में 90 प्रतिशत तक है। साल का वितरण मृदा के भौतिकगुण जल निकास, नमी एवं शैल समूहों के संगठन पर निर्भर करता है। साल वन मुख्यतः बालुकाश्म से बनी बलुई दोमट मिट्टी में पाये जाते हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार भारत को प्राकृतिक पर्यावरण, उच्चावच, संसाधनों एवं जनसंख्या के आधार पर चार भागों में बाँटा जा सकता है जिसमें प्रथम उच्च धरातल, शील जलवायु न्यूनतम जनसंख्या वाला हिमालय क्षेत्र है जहाँ की आर्थिक स्थिति वनों पर आश्रित है, तृतीय अधिक जनसंख्या वाले मैदानी क्षेत्र हैं जो मुख्य रूप से कृषि पर आश्रित हैं, द्वितीय खनिज संसाधनों से युक्त दकन का पठारी क्षेत्र है जो सामान्य जनसंख्या वाले क्षेत्र है तथा चतुर्थ मरूस्थलीय निर्धन क्षेत्र हैं। इन चारो भागों की अलग अलग पर्यावरणीय एवं सामाजिक समस्याएं है। पर्वतीय क्षेत्र के अनुपजाऊ मिट्टी, ढालदार क्षेत्र जो कि सीढ़ीदार खेत बनाने के लिए अत्यधिक खर्चीला तथा पारिस्थितिक दृष्टि से हानिकारक होता है, जिसके फलस्वरूप जनसंख्या का जमाव कम पाया जाता है, मैदानी क्षेत्र विश्व के संघनतम बसे क्षेत्रों में से हैं जहाँ जनसंख्या विस्फोट की स्थिति उत्पन्न हो रही है पठारी प्रदेश खनिज संसाधन युक्त है अतः यहाँ वनस्पति आवरण का विनाश करके उसे कृषि योग्य भूमि में परिवर्तित कर दिया गया है। अतः यहाँ निर्वनीकरण मृदाक्षरण, भूस्खलन, बीहड़ीकरण, बजर विकास आदि की समस्यायें बढ़ती जा रही हैं जिनका नियोजन एवं निराकरण तत्काल आवश्यक है। सीधी उच्च भूमि दकन के पठारी भाग का ही एक अंग है अतः यह पठारी पर्यावरण के अन्तर्गत स्थित है तथा यहाँ भी विविध प्रकार की पठारी भूपर्यावरणीय समस्याएं वर्तमान है।

REFERENCES

1. सिंह, प्रदीप विन्ध्य प्रदेश में पर्यटन का पर्यावरण पर प्रभाव, अप्रकाशित शोध प्रबंधन, अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा।

2. सिंह, बी०पी० पर्यावरणीय विभिन्नतायें एवं पर्यटन

3. पाण्डेय जयशंकर प्रसाद म.प्र. में पर्यटन।

4. श्रीवास्तव बी.के. पर्यावरण और पारिस्थितिकी, वन्सुधरा प्रकाशन गोरखपुर।

5. सिंह, सुमन्त मारता एवं मध्यप्रदेश तथा प्रयोगात्मक भूगोल।

6. नेगी, पी.एस. पारिस्थितिकीय विकास एवं पर्यावरण भूगोल।

7. सिंह, बी.पी. एवं सिंह सुमन्त पर्यावरणी विभिन्नतायें एवं पर्यटन, विजयांचल का एक अध्ययन।

8. सिंह अरुण जिले में पर्यटन केन्द्र संभावनायें एवं चुनौतियां लघुशोध प्रबंधन अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा।